ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
ISSN No.: 2347-2944, *RNI:UPBIL04292,REG.No.:561/2013-14 Vol.-I, No.-1,* **PP-68-69**, *YEAR 2014*

परम्परागत लोक कलाओं का व्यापार

❑ डॉ. गुलाब धर*

इक्कीसवीं सदी की ओर बढ़ती हुई आज की दौड़ती–भागती जिन्दगी में मानव अपने सारे बौद्धिक व्यापक दूरदर्शन और कम्प्यूटर के साथ ही पूर्ण कर लेता है, ऐसी दशा में दोनों ही परिस्थितियाँ सामने आती है। कला मानव क्रियाकालाप का एक सबसे पुराना और सर्वाधिक रूप है एक ओर तो कलाओं की और उसकी अरुची और मशीनीकरण के इस बोझिल वातावरण से लोक कलाओं का वातावरण समाप्त होता जा रहा है। वैश्वीकरण के युग में कला ने व्यवसायिक रूप ले लिया है। भारतीय कला और लोक कला के विदेशी खरीरदारों में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है। वर्तमान भारतीय लोककला की अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में एक विशिष्ट स्थान बना लिया है। मनुष्य के भौतिक जीवन तथा आध्यात्मिक उत्पादन के धन की आवश्यकत होती है। इसकी पूर्ति के लिए वह समय की माँग के अनुरूप अपनी कला को व्यासायिक रूप प्रदान करता है। आज कलाकारों ने अपनी कलाकृतियाँ भी बाजार में बड़ी मात्रा में बेचने के लिए उन्हें व्यवसायिक रूप प्रदान किया है। उनका उद्देश्य अपनी कला की अभिव्यक्ति को दर्शकों के सामने प्रस्तुत कर इसके मध्य से पूँजी कमाना है। पहले प्रत्येक उत्सवों में घर की सजावट हेतु महिलायें प्रतीकों व चिन्हों को घर में स्वयं बनाती थी परन्तु आज के बदलते समाज में उन्हें भी बाजार में निर्मित कलाकृतियों की ओर आकर्षित किया है। उत्सवों में घरों को सजाने हेतु महिलायें प्रतीकों एवं चिन्हों को बाजार से एक विशेष मूल्य देकर अर्जित करती है। इस कारण प्रत्येक लोगों की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए बाजार में कलाकारों द्वारा बनायी गयी कलाकृतियाँ, मिट्टी की मूर्तियाँ, नक्कासी किये मिट्टी के बर्तन एवं प्रतीक चिन्हों तथा सजावट का प्रत्येक समान बाजार में उपलब्ध रहता है।

भारतीय समाज में लोकप्रिय कला पर विशेष आकृष्टि रहा है और क्या कारण है कि आज अमेरिका पॉप (चालू) कला का आग्रह है। क्या इस तरह की कला का सम्बंध सामाजिक समृद्धि से है और क्या सामाजिक समृद्धि कला में ह्रास के कारण पैदा करती है। सामाजिक समृद्धि ने उत्कृष्ट कला को भी जन्म दिया है। कम से कम स्थापत्य और मूर्ति कला के संदर्भ में इसे स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। खजुराहो और कोणार्क के मंदिर समृद्ध समाज की ही रचना थी। यह आम बात है कि उन पर तांत्रिक प्रभाव है। मूलरूप से वे महान कलाकृतियाँ है और अगर उस वक्त का समाज समृद्ध नहीं होता तो शायद उनकी रचना भी नहीं होती। इन सवालों पर विचार करना भारतीय कलाकार के लिए यह सत्य उपयोगी है।

लोक कला हमारे मन की संवेदनाओं को जगाकर हमें सामाजिक संदर्भों से जोड़ती है जीवन शैली, चिन्तन और मानव का समन्वित रूप ही कला संस्कृत है शिक्षा व परम्परा को सीखने की प्रवृत्ति लोक कला है। लोककला को परम्परा से आगे बढ़ाने का श्रेय ग्रामीण लोगों को जाता है। जन सामान्य की भावनाओं व संस्कारों से जुड़ी होने के कारण लोक कला समाज में स्थायी बन जाती है। इनमें उल्लास की सम्भावनायें छिपी रहती है। लोक कला ग्रामवासियों के लिए अभिव्यक्ति के खुले मैदान जीवन के रंगीन सपने होते हैं। लोककला का नाम भिन्न–भिन्न प्रदेशों में अलग होते हैं। लोक कला समूहगत भावना से उपजी कला होती है। इस कला को किसी की व्यक्तिगत धरोहर नहीं कही जा सकती यह परम्परा संस्कारों से जुड़ी होती है। जो

*सहा.आचार्य चित्रकला विभाग ज.रा.वि.वि.,चित्रकूट, उ0प्र0

सामाजिक जनमानस की भावना का विकास करती है हमारे देश की हजारों अनपढ़ औरतों ने संस्कृतिक धरोहर को बचाकर रखा है। भारतीय कला परम्परायें इतनी समर्थ है कि उन्हें बाजार की आँधी उड़ा नहीं सकती। अभी तक यही माना जा रहा है कि भारत की लोककलाएँ इतनी समृद्ध है। लोककला की नवीन सम्भावनाओं को कला व्यवसायियों ने भी बहुत प्रभावित व प्रोन्नत किया है। भारतीय परम्परागत लोककलाकृतियों के लिये विश्व पलट दर एक नवीन जोश दृष्टिगत होने लगा है। लोककला परम्परागत दैनिक जीवन में प्रायः बोझ परिस्थितियों के सम्पर्क से इन्द्रियों को सुख की अनुभूति कराती है, किन्तु उनकी सीमा ऐन्द्रिक होती है। सामान्य भाषा में दृष्टिगत सौन्दर्य से प्राप्त सुख को इस कोटि में रखा जा सकता है। किन्तु जब सौन्दर्यानुभूति किसी रचना के माध्यम से होती है तब उसकी अनुभूति इन्द्रियों को पार करके अन्तःकरण को दिव्य आनन्द प्रदान करती है। कला संवेदनशील क्षण को सोच में डालकर प्रस्तुत कर देती हैं

आदिम और कृषक समाज कलाकार जब जो कार्य करता है तो वह उससे अपने कलात्मक आधार पर चीजों को जोड़ता है और बदलता है मनुष्य ओर कलाकार के द्वारा निर्मित वस्तुओं को धनोपार्जन के लिये व्यक्ति अपनी वस्तु को स्वयं अपनी आवश्यकतानुसार बनाता था। उसमें त्रुटियाँ अधिक नहीं होती थी, क्योंकि उनका उद्देश्य धनोपार्जित करना होता है। कृषक समाज में जहाँ कोई कला, उद्योग का रूपधारण कर लेता है वहाँ उसका सारा परिवार एक ही कार्य करता है। क्योंकि जितना अधिक सामान तैयार होता है उतना अधिक पैसा प्राप्त होता है। आधुनिक युग में चमड़ा के कलात्मक वस्तुओं का काफी उद्योग प्रचलित है, जिसमें जैकेट, कोट, बैग, पर्स आदि बनाये जाते हैं हमारे देश जहाँ और कलात्मक पर्स प्रचलित है। पहाड़ी क्षेत्रों में लकड़ी के कृतियों का भिन्न–भिन्न प्रकार की सामग्री बनायी जाती है। लकड़ी के उद्योग में अनेक प्रकार के खिलौने तथा सामान बनाया जाता है। दरवाजे, सन्दूक जिस पर तरह–तरह की कलात्मक नक्कासी से बनाया जाता है। काश्मीर के पेपर से बने खिलौने और उिब्बे, आकार की लकड़ी से निर्मित खिलौने और सामान वाराणसी और चित्रकूट में लकड़ी के बने खिलौने हैदराबाद और राजस्थान में विभिन्न प्रकार के लाख से बने खिलौने और चूड़िया शामिल है। कृषक समाज में अधिक समाज की अपेक्षा श्रम विभाजन होता है लोहार, बढ़ई, रंगरेज कुम्हार अपना, अपना कार्य स्वयं करते थे। कुम्हार गिरि कृषक समाज का मुख्य उद्योग रहा है। इन उद्योगों की कम मूल्य का पात्र कलात्मक रूपी में सुन्दरता का विचार नहीं किया जा सकता है। ज्यादा मूल्य के पात्रों पर कलात्मकता का बहुत ध्यान रखा जाता है उनको टिकाऊ बनाया जाता है। 18वीं और 19वीं शताब्दी में औद्योगिक क्रान्ति होने के कारण हस्त उद्येम का स्थान मशीन ले लिया जिससे हस्त उद्योग प्रभावित हुआ हस्त उद्योग में बनायी गयी वस्तुओं कि नकल करके मशीनों द्वारा उसे बनाया गया जो केवल उपयोगिता का लक्ष्य पूरा करता है। परन्तु कलात्मक नहीं होता है। हाथ से बनी वस्तु कलात्मक होती है। हाथ ही शक्ति की व्याख्या करता है। किसी भी देश की समृद्धि उस देश के उत्पादन पर निर्भर करता है। और उत्पादन की ब्रिकी कलात्मक उत्कृष्टता पर निर्धारित करता है। लोक कलायें विभिन्न वर्गों एवं विशाल देशों के विभिन्न क्षेत्रों तक फैली है समय–समय पर कलाओं का प्रशिक्षण शिविर के मध्य से इन कलाओं को प्रशिक्षण के द्वारा प्रचार–प्रसार हो जिससे लोक कला संस्कृति जागृत रहें। लोक कला का भी उन्नयन होगा आदि भविष्य भी उज्जवल बनेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

1. श्रीवास्तव मधु, बुन्देलखण्ड की लोक चित्रकला, पृ.170,82
2. गौरोला वाचस्पति, भारतीय चित्रकला, पृ.सं. 246
3. शर्मा लोकेश चन्द्र, भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास, पृ.सं.179
4. भारद्वाज विनोद, आधुनिक कला कोश, पृ.82–83
5. समकालीन कला, अंक–29, पृ.सं.42
6. भारद्वाज, विनोद समकालीन भारती कला, पृ.42
7. पाण्डेय, अशोक कुमार प्राचीन भारत, पृ.सं. 409
8. अग्रवाल डॉ. गिर्राज किशोर आधुनिक यूरोपियन चित्रकला, पृ.सं.151